जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक

ककसाड़

वर्ष 11 अंक 125 / अगस्त, 2026
मूल्य : 25/- रुपए

ककसाड़
राष्ट्रीय मासिक पत्रिका

ISSN 2456-2211

दिल्ली से प्रकाशित

ककसाड़

(जनजातीय चेतना, कला, साहित्य, संस्कृति एवं समाचार का राष्ट्रीय मासिक)

अगस्त 2026 वर्ष-11 • अंक-125

संस्थापना वर्ष 2015

प्रबंध एवं परामर्श संपादक
कुसुमलता सिंह

संपादक
डॉ. राजाराम त्रिपाठी

कानूनी सलाहकार
फैसल रिजवी, अपूर्वा त्रिपाठी

•

ग्राफिक डिजाईन
रोहित आनंद

• मुख्य कार्यालय एवं रचनाएँ भेजने का पता •

सी-54 रिट्रीट अपार्टमेंट, 20-आई.पी. एक्सटेंशन, पटपड़गंज, दिल्ली-110092

फोनः 9968288050, 7048905277

•

• संपादकीय कार्यालय •

151, डी.एन.के. हर्बल इस्टेट, कोण्डागाँव, छ.ग.-494226

फोनः 9425258105, 07786-242506

ई-मेल : kaksaadeditor@gmail.com
kaksaadoffice@gmail.com

वेबसाइट : www.kaksad.com

मूल्य : **रु. 25** (एक प्रति), वार्षिक : **रु. 350/-** संस्था और पुस्तकालयों के लिए वार्षिक : **रु. 500/-** वार्षिक (विदेश) : **$110** यू.एस। आजीवन व्यक्तिगत : **रु. 3000/-** संस्था : **रु. 5000/-**

संपादन-संचालन पूर्णतः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक
दिल्ली से प्रकाशित होने वाली 'ककसाड़' पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं जिनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं।
• ककसाड़ से संबंधित सभी विवादास्पद मामले केवल दिल्ली न्यायालय के अधीन होंगे • **कुसुमलता सिंह** स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक।

अनुक्रम

दिल्ली लाइब्रेरी बोर्ड (संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार) द्वारा पुरस्कृत

4. **संपादकीय**

साक्षात्कार

6. जीवन में अच्छे गुरुओं का होना बहुत जरूरी है
(प्रो. नचिकेता सिंह से **अनिरूद्ध कुमार सुधांशु, नीरज कुमार मिश्र** और **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

कला-विशेष

13. समकालीन आदिवासी कला में, वैश्विक संभावनाओं का कलाकार सी. आर. हेम्ब्रम : **महादेव टोप्पो**

नई पहल

15. कृत्रिम बुद्धिमत्ता से गोंडी भाषा को नई जीवन शक्ति : **थोडासम कैलाश**

लेख

17. बैगा जनजाति की चिकित्सा पद्धति : **डॉ. विजय चौरसिय**
20. महादेवी वर्मा के रेखाचित्र 'नीलकंठ' में राष्ट्रीयता : **संध्या सिलावट**

कहानी

24. नई राह : **राजनारायण बोहरे**
26. जो चल सको तो चलो : **नीरजा हेमेन्द्र**
32. अबाबील (उर्दू कहानी) : **ख़्वाजा अहमद अ'ब्बास**

कविताएँ/ग़ज़लें

34. **केशव शरण,** 34. **मुकुल शर्मा** 35. **दिनेश शुक्ल** 36. **सुरेखा साहू**

यात्रा-वृतांत

37. पोखरा से मुक्तिनाथ महाहिमालय की गोद में एक कठिन, रोमांचकारी और आत्मानुभूत यात्रा : **लक्ष्मीकांत मुकुल**

कभी-कभार / शब्दांजलि

42. तीजन बाईः स्त्री की अदम्यता का लोक-रूपक : **अशोक वाजपेयी**
43. तीजन बाई : लोक की मिट्टी से उठी एक अप्रतिम आवाज : **शैलेन्द्र चौहान**

पुस्तक समीक्षा

44. सभ्यता समीक्षा और कविता : **शिवेन्द्र कुमार मौर्य**

पुस्तक चर्चा

47. सिनेमा को पढ़ते हुए : **विरेश**
36. **कहावतें**
36. **क्या है ककसाड़?**
31. **यादें**
46-49 **साहित्यिक समाचार**

आवरण कलाकृति - सी.आर. हेम्ब्रम
(झारखंड)

संपादकीय

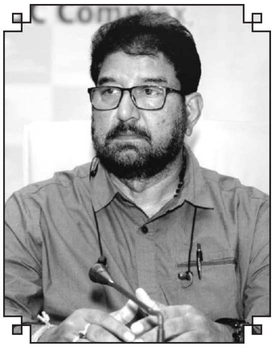

आशा है यह अंक जब तक आपके हाथों में पहुंचेगा तब तक मानसून खेतों की प्यास भली-भांति बुझा चुके होंगे। शहरों-कस्बों का अपशिष्ट बारिश से साफ हो चुका होगा, गांव हरियाली से उमग रहे होंगे।

हालांकि प्रकृति ने इस साल एक बार फिर हमें बिना कोई नोटिस दिए आईना दिखा दिया। मौसम विशेषज्ञों ने मानसूनी बादलों के साथ गहन चर्चा के उपरांत अपना संयुक्त प्रेस नोट बड़े आत्मविश्वास के साथ जारी किया था, समाचार पत्रों ने भी मुख्य पृष्ठ पर मोटी मोटी हेडलाइन देते हुए उसे प्रकाशित भी कर दिया। कि इस साल मानसून महराज अपने लाव लश्कर के साथ 7 जून को बस्तर प्रवेश कर रहे है।। किसानों ने बारंबार धोखा खाने के बावजूद अपनी आदत से मजबूर छपी खबर पर यकीन कर लिया। सो किसानों ने अपने हल बैल, ट्रैक्टर दुरुस्त कर जुताई बोआई शुरू कर दिये। लेकिन मानसून लगभग पाँच सप्ताह बाद, 15 जुलाई को बस्तर पहुँचा। महाकवि कालिदास के काल के बादल काफी अनुशासित और विश्वसनीय तथा मर्यादित होते थे। पर वर्तमान दौर के बादल तो स्वभाव से ही मनमौजी होते हैं। वे ना तो हमारी घड़ियों और कैलेंडरों के अनुसार चलते हैं और ना ही जीपीएस और गूगल मैप का अनुसरण करते हैं। हमारे दौर के कवियों ने बादलों को यूं ही आवारा थोड़े ही कहा है। आजकल के बादल निकलते कहीं और पहुंच कहीं और जाते हैं, गरजते कहीं और बरसाते कहीं और हैं।

विज्ञान ने मानवता को बहुत कुछ दिया है और उसका सम्मान होना ही चाहिए। किंतु विज्ञान का पहला संस्कार विनम्रता है, अहंकार नहीं। जिस दिन मनुष्य यह मान बैठता है कि उसने प्रकृति को पूरी तरह पढ़ लिया है, उसी दिन प्रकृति उसकी उत्तर-पुस्तिका में लाल स्याही से एक नया प्रश्न लिख देती है। कभी बस्तर में वर्षा ऋतु चार-चार महीनों तक धरती को भिगोती थी। नदी, नाला, झरना और पहाड़ सभी मिलकर वर्षा का एक विराट उत्सव रचते थे। धान खेतों में पानी ही पानी नहीं, किसान के चेहरे पर भी नमी दिखाई देती थी। आज स्थिति यह है कि पूरी वर्षा ऋतु दो या ढाई महीनों में सिमटती जा रही है। उस दस सप्ताह में से यदि पाँच सप्ताह केवल इंतजार में ही बीत जाएँ तो किसान की दशा किंकर्तव्यविमूढ़ जैसे हो जाती है। उत्साह का भी एक मौसम होता है, वह भी अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करता। कभी वर्षा का अनुमान किसान चींटियों की कतार देखकर लगा लेता था। महुआ के फूल, हवा की गंध, पक्षियों की उड़ान, दीमकों की हलचल और वृक्षों की भाषा उसके मौसम विभाग थे। आज हमारे पास वैज्ञानिकों की फौज है, उपग्रह हैं, सुपर कंप्यूटर हैं, राडार हैं, कृत्रिम बुद्धिमत्ता है, लेकिन फिर भी प्रकृति का अंतिम निर्णय उसी के पास सुरक्षित है। शायद इसलिए कि प्रकृति गणित से कम और संतुलन से अधिक संचालित होती है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन (WMO) पिछले कई वर्षों से चेतावनी देता आ रहा है कि बढ़ते वैश्विक तापमान के कारण मानसून अधिक अनिश्चित, अधिक असमान और अधिक उग्र होता जाएगा। जलवायु परिवर्तन अब भविष्य का संकट नहीं, वर्तमान की वास्तविकता है। मौसम अब धीरे-धीरे कविता की लय नहीं, शेयर बाजार की तरह व्यवहार करने लगा है। कब ऊपर जाएगा, कब नीचे आ जाएगा, इसका भरोसा किसी को नहीं। संस्कृत का एक अत्यंत सारगर्भित वचन है— "दशकूपसमावापी, दशवापीसमो ह्रदः। दशह्रदसमः पुत्रो, दशपुत्रसमो द्रुमः" अर्थात, दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक सरोवर, दस सरोवरों के बराबर एक पुत्र और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष का महत्व बताया गया है।

जरा ठहरकर सोचिए। जिन ऋषियों ने एक वृक्ष का मूल्य दस पुत्रों के बराबर बताया, उनकी संतानें आज उसी वृक्ष को सड़क चौड़ी करने, कॉलोनी बसाने, खदान खोलने और पार्किंग बनाने को पहली शर्त मान बैठी हैं। फिर आश्चर्य करती हैं कि बादल नाराज क्यों हैं! यह वैसा ही है जैसे कोई व्यक्ति अपने घर की छत उखाड़ दे और फिर ईश्वर से शिकायत करे कि वर्षा का जल उसके घर में क्यों भर रहा है। अमेरिकी पर्यावरण 'दार्शनिक एल्डो लियोपोल्ड' ने बेबाक लिखा था, "हम भूमि के मालिक नहीं, उसके समुदाय के सदस्य हैं।" बस्तर का जनजातीय समाज इस एक वाक्य पर शोध-प्रबंध भले नहीं लिखता, पर वह इसे अपने दैनिक जीवन में जीता है। उसके लिए जंगल लकड़ी का गोदाम नहीं, परिवार का सबसे बुजुर्ग सदस्य है। नदी पानी केवल जल स्रोत नहीं, पीढ़ियों की माँ है। पहाड़ खनिज की खान नहीं, लोकस्मृति का प्रहरी है। विडंबना देखिए। जिसने जंगल बचाए, वह पिछड़ा कहलाया। जिसने जंगल काटे, वह विकसित कहलाया। जिसने नदी की पूजा की, वह अशिक्षित माना गया। जिसने नदी को नाले में बदल दिया, वह योजनाकार बन बैठा। यदि यही विकास है तो फिर विनाश किसे कहेंगे? आज पर्यावरण संरक्षण भी एक विचित्र उद्योग बन चुका है। वातानुकूलित सभागारों में 'ग्रीन कॉन्फ्रेंस' होती है, मंच पर प्लास्टिक की बोतलें सजी रहती हैं, बाहर दर्जनों डीजल गाड़ियाँ खड़ी रहती हैं और अंत में स्मृति-चिह्न के रूप में एक नन्हा-मुन्ना पौधा भेंट कर दिया जाता है। पौधा घर पहुँचते-पहुँचते भले सूख जाए, इससे किसी की प्रतिष्ठा पर कोई आँच नहीं आती। हां बढ़िया फोटो अखबार में छपनी चाहिए, बस। लगता है वृक्ष भी मन ही मन कह रहे होंगे, "हे मनुष्य! हमें लगाने से पहले एक बार हमारे बचे-खुचे अग्रजों, पूर्वजों को ही बचाकर देख लो।"

प्रकृति का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह नहीं कि वृक्ष काटे जा रहे हैं, उसका सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि उसकी चिंता भी अब एक औपचारिक कार्यक्रम बनती जा रही है। जिस समाज में पौधारोपण से अधिक महत्व उसके उद्घाटन समारोह को मिलने लगे, वहाँ जंगल-जमीं कभी नहीं हरियाते। हरियाली केवल फाइलों और नेता, बाबू, अफसरों के बैंक खातों में कैद हो कर रह जाती है। आज प्रश्न केवल इतना नहीं है कि मानसून कहाँ अटक गया और वर्षा देर से क्यों आई। असली प्रश्न यह है कि क्या हमने स्वयं वर्षा के स्वागत योग्य प्राकृतिक परिस्थितियाँ बचाकर रखी हैं? जिस धरती पर कभी वृक्षों की जड़ें वर्षा की प्रत्येक बूँद को सहेज लेती थीं, वहाँ आज कंक्रीट की चादर बिछी है। जिस मिट्टी में पानी उतरकर भूजल बनता था, वह अब सीमेंट और डामर के नीचे कैद है। हम बादलों से शिकायत करते हैं, पर अपने कुल्हाड़ों से कभी प्रश्न नहीं करते। ब्रिटिश चिंतक 'वेंडेल बेरी' ने लिखा था, "धरती का शोषण तभी होता है, जब उसे समुदाय नहीं, वस्तु समझ लिया जाता है।" यही आधुनिक विकास की सबसे बड़ी त्रासदी है। मैंने बस्तर में वह दौर भी देखा है, जब गाँवों में किसी विशाल पुराने वृक्ष को काटने की जरूरत पड़ने पर पहले पंचायत बैठती थी, विकल्पों पर विचार किया जाता था फिर अंत में ग्राम देवता की अनुमति ली जाती थी। आज हजारों लाखों वृक्ष एक प्रशासनिक आदेश की एक स्याही से धराशायी हो जाते हैं। प्रगति की गति इतनी तेज हो गई है कि पेड़ों को अपने पक्ष में गवाही देने का अवसर भी नहीं मिलता। कभी हमारे पूर्वज वृक्ष लगाते थे ताकि अगली पीढ़ी छाया में बैठे। आज हम वृक्ष काटते हैं ताकि अगली पीढ़ी वातानुकूलित कमरों में 'जलवायु परिवर्तन' पर सेमिनार कर सके। इतिहास शायद इससे बड़ा व्यंग्य कभी नहीं लिख पाएगा। अमेरिकी लेखिका रेचल कार्सन ने दशकों पहले चेताया था कि, "प्रकृति में कोई भी चीज अकेले अस्तित्व में नहीं रहती।" वास्तव में जंगल केवल पेड़ों का समूह नहीं होते। उनके साथ पक्षियों का संगीत, औषधीय वनस्पतियाँ, मिट्टी के सूक्ष्म जीव, आदिवासी लोकगीत, बच्चों की हँसी और आने वाली पीढ़ियों का भविष्य भी जुड़ा होता है। ऐसा जंगल हमारे अंतहीन लालच के चलते जब काटकर जमींदोज किया जाता है तो केवल पेड़ कट कर धरती पर नहीं गिरते बल्कि मानव सभ्यता का अदृश्य स्तंभ भी ढह जाते हैं। इसीलिए भारतीय मनीषा ने कहा है– 'परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः, परोपकाराय वहन्ति नद्यः।' अर्थात, वृक्ष दूसरों के लिए फल देते हैं और नदियाँ दूसरों के लिए बहती हैं। प्रकृति का प्रत्येक तत्व त्याग का पाठ पढ़ाता है। केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी बन बैठा है जो लेना तो प्रकृति से सबकुछ चाहता है, पर लौटाना बिल्कुल ही भूल गया है। बस्तर का जनजातीय समाज इस दर्शन का जीवंत उदाहरण है। उसने कभी 'सस्टेनेबल डेवलपमेंट' शब्द नहीं गढ़ा, लेकिन उसका जीवन ही टिकाऊ विकास का सबसे बड़ा टिकाऊ दस्तावेज है। उसने कभी 'कार्बन क्रेडिट' का व्यापार नहीं किया, लेकिन करोड़ों टन कार्बन को जंगलों में सुरक्षित रखा। उसने कभी पर्यावरण दिवस पर भाषण नहीं दिए, क्योंकि उसके लिए वर्ष का प्रत्येक दिन पृथ्वी दिवस था। आजादी के बाद से ही हम कहते आ रहे हैं कि हमें जनजातीय समाज को मुख्यधारा में लाना है। शायद अब समय आ गया है कि मुख्यधारा स्वयं विनम्र होकर जनजातीय जीवन-दर्शन से जुड़ना सीखे। जिसने जंगल बचाए हों, उससे जंगल का पाठ पढ़ना अपमान नहीं, बुद्धिमानी है। और वर्तमान संक्रमण काल में साहित्य पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। यदि साहित्य केवल पुरस्कारों और विमर्शों तक सीमित हो गया, तो वह अपने समय के प्रति अन्याय करेगा। कलमकार भूल गए हैं शायद कि कलम का सबसे बड़ा धर्म सत्ता की प्रशंसा नहीं, समय की सच्चाई को दर्ज करना है। यदि नदियाँ सूख रही हैं, जंगल कट रहे हैं, मौसम बदल रहा है और किसान आत्महत्या कर रहा है , तो साहित्य का यह मौन भी अक्षम्य अपराध माना जाएगा। अंत में केवल इतना ही... यदि हम अब भी नहीं चेते, तो आने वाली पीढ़ियाँ वर्षा को बादलों में नहीं, पुराने साहित्य में खोजेंगी, जंगलों को यात्राओं में नहीं, चित्रों में देखेंगी, और जनजातीय संस्कृति को जीवित समाज में नहीं, संग्रहालयों की काँच की अलमारियों में। हमारी कामना है कि ऐसा समय कभी न आए। आइए, हम सब मिलकर उस भारत रक्षा करें जहाँ जंगल केवल नक्शे पर हरे रंग से नहीं, जीवन में हरियाली से पहचाने जाएँ, जहाँ वर्षा केवल मौसम विभाग की सूचना न हो, बल्कि धरती की मुस्कान बने, और जहाँ विकास की परिभाषा में प्रकृति, संस्कृति, किसान और जनजातीय समाज सबसे पहले याद किए जाएँ, सबसे अंत में नहीं। 'ककसाड़' इसी विश्वास के साथ प्रकाशित होती रही है कि जनजातीय संस्कृति किसी संग्रहालय में रखने की वस्तु नहीं, बल्कि भविष्य की सभ्यता की आधारशिला है। ऐसे समय में बस्तर के जंगल, जनजातीय परंपराएँ, लोकज्ञान और प्रकृति के प्रति उनका सहचर भाव व व्यवहार केवल भारत की धरोहर नहीं, मानवता की आवश्यकता हैं। इसलिए हम अपने सभी पाठकों, लेखकों, शोधकर्ताओं, लोक कलाकारों, विद्यार्थियों और प्रकृति-प्रेमियों से आत्मीय आग्रह करते हैं कि ककसाड़ को अपना मंच बनाएँ। अपने क्षेत्र की जनजातीय परंपराएँ, लोककथाएँ, पर्यावरणीय अनुभव, शोध-लेख, संस्मरण, कविताएँ, चित्र और सुझाव हमें भेजें। एक पत्रिका केवल संपादक नहीं निकालता, उसे उसके पाठक जीवित रखते हैं। आपके संदेशों का सुझावों का पत्रों का ई-मेल का हमें इंतजार रहेगा। इसके साथ ही अगले अंक तक के लिए विदा!

आपका

राजाराम त्रिपाठी

डॉ. राजाराम त्रिपाठी
मो. 94252-58105

जीवन में अच्छे गुरुओं का होना बहुत जरूरी है

(**प्रो.नचिकेता सिंह** से **अनिरूद्ध कुमार सुधांशु, नीरज कुमार मिश्र** और **कुसुमलता सिंह** की बातचीत)

प्रो. नचिकेता सिंह : दिल्ली विश्वविद्यालय (DU) के अंतर्गत श्याम लाल कॉलेज (सांध्य) के प्राचार्य हैं। राजनीति विज्ञान में एक प्रमुख शिक्षाविद, शोधकर्ता और लेखक जो अंतरराष्ट्रीय संबंधों और लोक प्रशासन के क्षेत्रों के विशेषज्ञ विद्वान हैं। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय और रेवेन्शा यूनिवर्सिटी (कटक, उड़ीसा) से अपनी शिक्षा प्राप्त की है।

• गुरु तेग बहादुर खालसा कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय में राजनीति विज्ञान के प्रोफेसर पद पर तीन दशक तक सेवाएँ दी हैं।

• प्रशासनिक और शैक्षणिक मामलों के संदर्भ में दिल्ली विश्वविद्यालय की सर्वोच्च निर्णय लेने वाली सर्वोच्च संस्थाओं (tatutory Bodies) में अपने सक्रिय दो कार्यकालों में दिल्ली विश्वविद्यालय के शिक्षकों से जुड़े मुद्दों और समस्यों को गंभीरता से उठाया है. केंद्रीय विश्वविद्यालय, पांडिचेरी के निर्वाचित नामित सदस्य के रूप में अपनी सेवाएं दे चुके हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के तहत (CEC) के शैक्षणिक सलाहकार परिषद के सदस्य के रूप में सेवाएँ दे चुके हैं।

• अंतरराष्ट्रीय राजनीति, दक्षिण एशिया के भू-राजनीतिक मुद्दों और लोक-निजी भागीदारी (Pulic-Private Partnership) पर कई शोध-पत्र और आलेख प्रकाशित और कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों (जैसे ई-गवर्नेस से संबंधित कार्य) का प्रकाशन।

अनिरुद्ध : सबसे पहले हम यह जानना चाहते हैं कि आपने बाल जीवन और प्रारंभिक शिक्षा से प्राप्त अनुभव को अपने जीवन में किस तरह से ढाला है ?

प्रो. नचिकेता सिंह : बहुत-बहुत धन्यवाद। यह बहुत ही अच्छा सवाल है। आज तक शायद किसी ने पूछा नहीं था। क्योंकि ऐसे सवाल हमें अपने बचपन में वापस लौटाकर ले जाते हैं आपको बहुत अच्छी और फीलिंग देते हैं। हम लोग 60 के दशक में पैदा होने वाले पीढ़ी हैं। सन् 68 में मेरा जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था, जहाँ सारे एजूकेशन फील्ड में थे। मेरे पिता मनोविज्ञान विभाग के प्रोफेसर थे। मेरी माँ गृहणी थी, लेकिन उन्होंने भी साइकॉलोजी में पढ़ाई की थी। परिवार के बाकी लोग भी शिक्षा के क्षेत्र में थे। मेरे पिता एक कॉलेज में शिक्षक थे। यह मैं सत्तर की दशक की बात कर रहा हूँ। उस समय हम उड़ीसा के एक बहुत ही पिछड़े हुए क्षेत्र में रहते थे। प्रारंभिक जीवन में बहुत कुछ अनुभव वहाँ के वातावरण से मिला। उस समय मैं गवर्नमेंट स्कूल में पढ़ा। आज जब बच्चों को ये स्टोरी सुनाता हूँ कि हम स्कूल जाते समय एक जंगल के साथ, एक नदी को भी नंगे पैर पार करके जाते थे तो यह सुनकर वे हँसते हैं। कहने का मतलब यह है कि प्रकृति जो सिखाती है और उससे जो संबंध बनता है, वही जीवन भर काम आता है। यह संबंध आपके नजरिए को बदल देता है। पिता जी के तबादलों ने अलग-अलग स्थानीयता से घुलने-मिलने का मौका दिया। उससे जीवन के अनुभव में विविधता आई। उड़ीसा के बहुत ही प्रसिद्ध कॉलेज रेवनशॉ में पढ़ने का अवसर मिला। यह ब्रिटिश जमाने का बहुत पुराना कॉलेज हुआ करता था, लेकिन अब प्रतिष्ठित स्टेट यूनिवर्सिटी है। उसके बाद मैं दिल्ली यूनिवर्सिटी में पढ़ाई के लिए आया। जीवन के हर पड़ाव पर अलग-अलग अनुभव मिला। उस अनुभव से जीवन में बहुत कुछ सीखने को मिला। क्योंकि बाल जीवन के अनुभव, आगे के जीवन के लिए बहुत सहायक होते हैं।

नीरज : आप अभी अपने जीवन के बारे में बता रहे थे। जीवन के जो संघर्ष हैं, या कहें कि समाज से जो अनुभव मिलता है, उसके ताप में एक व्यक्ति का व्यक्तित्व निखरता है। आपको अपने व्यक्तित्व के विकास में